International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 3; Issue 1; January 2018; Page No. 461-464

काव्य–प्रयोजन

डॉ० विजय शंकर मिश्र
हिन्दी विभाग, सत्यवती कॉलेज (सांध्य), नई दिल्ली, भारत।

प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य के इतिहास के पूर्वमध्यकाल (अथवा भक्तिकाल) के आधार स्तंभों के काव्य–प्रयोजन स्पष्ट हैं। कथा–आधारित नहीं होते हुए भी दर्शन–परम्पराओं से अनुप्राणित क्रांतदर्शी कबीर की समता का शंखनाद करने वाली प्रखर सामाजिक चेतना सामाजिक व्यवस्थाओं में आमूलचूल परिवर्तन की माँग करती है। औपनिषिदिक् अद्वैतवाद को व्यावहारिक रूप में घटित होते देखना और अलौकिक योगानंद की प्राप्ति उनके मुख्य काव्य–प्रयोजन हैं। संसार–साहित्य में वात्सल्य रस के महानतम् महाकवि सूरदास का काव्य–प्रयोजन लीलाविहारी कृष्ण की मुख्य रूप से बाल तथा माधुर्य भाव की लीलाओं का गान करके लोक का रंजन करना है। मध्यकालीन भारत की आत्मा विश्वकवि तुलसीदास परातत्त्व 'भक्ति' को संपूर्ण जीवन–दर्शन के रूप में व्यवहृत एवं स्थापित करने की आकांक्षा रखते हैं। रस–निष्पत्ति इनतीनों रचनाकारों का सहज लक्ष्य है। जायसी ने अपने काव्य–प्रयोजनों को स्पष्ट रूप में बतलाया है। इनसे परिचित होना आवश्यक है। पदमावत की कथा का एक प्रेरक प्रयोजन महाभाव प्रेम की तात्त्विक व्याख्या करना है–

हिअ भँडार नग आहि जो पूँजी। खोली जीम तारा कै कूँजी।।...
मुहमद कवि जो प्रेम का ना तन रकत न माँसु।।
जेइँ मुख देखा तेइँ हँसा सुना तो आए आँसु।।[1]
कबि बिआस रस कौंला पूरी। दूरिहि निअर निअर भा दूरी।।
निअरहि दूरि फूल सँग काँटा। दूरि जो निअरैं जस गुर चाँटा।।
भँवर आइ बनखंड हुति लेहि कँवल के बास।
दादुर बास न पावहिं भलेहिं जो आछहिं पास।।[2]

महाकवि ने हृदय में अवस्थित अनुभूतियों को मुक्त करने की आकांक्षा व्यक्त की है। 'पदमावत' निश्चित तौर पर अपने सर्जक की सर्वथा निजी कामनाओं, अनुभवों एवं मधुर स्मृतियों का मार्मिक दस्तावेज़ है। इसकी कथा जीवनपर्यन्त चेतना में करवटें बदलती रही। जब आन्तरिक दबावों ने भीतर के बंधनों में बंधे रहने से इंकार कर दिया, तब इस प्रबंधकाव्य के रूप में उन्हें आकार मिला। इसीलिए इसमें अभिव्यक्त संवेदनाएं कवि की व्यक्तिगत उपलब्धि हैं। परिणामस्वरूप वे स्वंय में स्वाधीन साध्य नहीं होकर सर्जक कलाकार के निजी आवेगों द्वारा अनुशासित हैं। उनमें हर जगह विराट–व्यापक सामाजिकता खोजना समीचीन नहीं होगा।
जायसी ने अपने आवेगों को श्रृंगारिक प्रेम अथवा रति भाव से संबंधित बतलाया है। जिस महासागर में समस्त रस तथा भाव रूपी सरिताएं उद्भूत होकर विलीन और विलीन होकर उद्भूत होती हैं, उसे 'प्रेम' कहते हैं–

सर्वे रसाश्च भावाश्च तरंगा इव वारिधौ,
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति यत्र से प्रेम संज्ञकः।

पदमावत के रचनाकार ने इसी महाभाव के विश्लेषण का दावा किया है। समग्र सृष्टि का कोई प्राणी महाभाव प्रेम की अनुभूति से शतशः निरपेक्ष नहीं हो सकता। 'प्रेम' मानवीय जीवन का अमूल्य तत्त्व है। यह मधुर रस से आपूरित है। इसका आकर्षण अतीव सम्मोहक है। स्त्री–पुरुष का पारस्परिक आकर्षण मानवीय जीवन का महानतम् सत्य है। इसीलिए श्रृंगार रसराज है। लेकिन रचनात्मक रूप में श्रृंगारिक रति की नैतिकताओं का सम्यक् निर्वाह कर पाना प्रत्येक प्रेमी के सामर्थ्य की बात नहीं होती। बहुधा मधुर भावना शारीरिक आकर्षण तक सीमित रह जाती है। देह की माँग के पूरा होने के अनंतर भावना धारहीन होने लगती है। जायसी अपवादों में हैं। वे इस रचनात्मक प्रवृत्ति के गहनतम्–गंभीरतम् रहस्यों को जानने–समझने–बूझने की जिज्ञासा रखते हैं। इसीलिए उनकी यात्रा निरन्तर गतिशील रहती है। वे प्रेम के तल तक पहुँचना चाहते हैं। उनका भावुक हृदय प्रेमानंद की ओर तीव्रतम् गति से ललकता–लहकता है। इस प्रक्रिया में बेहद गहरी चोटें मिलती हैं, मर्मबेधी दर्द से साक्षात्कार होता है। विरह का घाव भूख–प्यास खत्म कर देता है। विरही 'घर' में बंधा नहीं रह सकता। उसका व्यक्तित्व क्रमशः विस्तार पाते हुए असीमित होने की दिशा में अग्रसरित होता है। प्रेमास्पद के ध्यान में लीन प्रेमसाधक का बाहरी बाना महत्त्वहीन है। जायसी उसकी आंतरिक छवि का साक्षात्कार करते हैं। एक प्रसिद्ध कथा के अनुसार मजनू आँखें बंद किए लैला के ध्यान में मग्न था। तभी उसके पास खुद खुदा पहुँचा। उसने उसे आँखें खोलने को कहा। मजनू ने कारण पूछा। उत्तर मिला कि जिसे देखने और पाने के लिए तमाम संसार जीवनपर्यन्त इच्छा करता है, वह खुदा स्वयं उसके सामने उपस्थित हुआ है। मजनू उत्तर देता है कि वह अपने नेत्र तभी उन्मीलित करेगा जब खुदा लैला का रूप धारण करके उसके सामने आएगा। उसे खुदा नहीं, लैला की छवि में डूबना है। जायसी ऐसे प्रेमवाहकों के हृदयतल तक पहुँचना चाहते हैं। वास्तविकता में वे ही रत्नसेन हैं, अलाउद्दीन हैं, हीरामन हैं, राघव चेतन हैं, मानसरोवर हैं, खलबलाए देव हैं, चिरविरही–चिर सौन्दर्य द्रष्टा–स्रष्टा हैं। 'पदमावत' प्रेम के आघातों द्वारा उत्पन्न रक्त और मांस की खुराक पर पला–पुसा अभीप्सित घाव है। कलाकार की वेदना से विकल चेतना आनंद पर आश्रित अवस्थाओं को सार्वकालिक बनाने की कामना रखती है। यह स्वाभाविक इच्छान्वित अनुभूति है। इसलिए उसकी कृति रस का कटोरा है। रसज्ञ–सहृदय इस पर सहज रूप से लुब्ध होता है। उथला–छिछोरा रूपलोभी इसके मर्म तक नहीं पहुँच सकता। मेढ़क कमलिनी के नितांत निकट रह कर भी उसके सौन्दर्य से अपरिचित रहता है। इसके विपरीत रसभावक प्रेमी होने के कारण भ्रमर दूर से आकर उसके रूप की सुगंध और रस का भोग करने में समर्थ हो पाता है। जायसी के ऐसे वक्तव्य अपनी प्रतिभा के प्रति अखण्डित आत्मविश्वास के सूचक हैं। साथ–ही–साथ ये प्रेम के विषय के प्रति उनकी वज्रदृढ़ प्रतिबद्धता

के संकेतक भी हैं। इसके बावजूद महाकवि अंततोगत्त्वा यदि कोई प्रतिज्ञा करता है, तो वह प्रेम पीड़ा के आँसू देने की ही है। अश्रुविगलित भावक इस कहानी का मंथन करके वेदनाविह्वल हुए– ''सुना जो पेम पीर गा पावा।''[3] सर्जक कलाकार का कलेजा किसी या किन्हीं बेहद दर्दीली चोटों से अहर्निश छलनी हुआ है। किसी मर्मबेधी आघात ने रचनाकार के समग्र जीवनेतिहास को आच्छन्न और आक्रान्त किया है। 'पदमावत' उसी से पैदा हुई हृदयविदारक चीत्कार है। किसी साधारण अल्पकालिक प्रभाव उत्पन्न करने वाली घटना की जीवनांशजीवी प्रतिक्रिया नहीं है। कृति रक्त की लेई से ग्रथित और गाढ़े प्रेमाश्रुओं से सिक्त है–

जोरी लाई रकत कै लेई। गाढ़ी प्रीति नैन जल भेई।।[4]

शारीरिक सौन्दर्य की शतशः निर्दोष अभूतपूर्व प्रतिमा की अवधारणा कथा की सर्जना का एक प्रेरक प्रयोजन है। पदमावत को बारम्बार पढ़ने के बाद मेरी यह धारणा बनी है कि जायसी की चेतना की कतिपय बुनियादी भावनाएँ प्यासी–की प्यासी ही रह गईं। वे जीवनपर्यन्त सगुण रूप में पूरी नहीं होने पाईं। उन्होंने कुछ स्थलों पर अभावों से हुए रोमाञ्चक संघर्ष की ओर अतीव मार्मिक एवं प्रभावी संकेत किए हैं। अपूर्ण मानसिक आकांक्षाओं की प्रतिक्रिया अवश्यंभावी है। बहुधा यह व्यक्ति को अकर्मण्य एवं कुण्ठित करती है, कभी–कभी विकृतियों की ओर भी धकेल देती है। आम तौर पर ऐसे में व्यक्ति निन्दा–रस में रुचि लेने लगता है। कई अवसरों पर यह प्रतिक्रिया संसार से पलायन को प्रेरित करती है। ऐसे में मनुष्य तटस्थ हो कर विरक्ति की ओर उन्मुख होता है। अनेकानेक अवसरों पर ऐसी परिस्थितियों में मनुष्य आत्मदया या आत्मप्रताड़ना या असहाय बेचारगी का शिकार भी होता देखा जाता है। उसका स्वयं पर से विश्वास हट जाता है। वह स्वयं को दुर्भाग्यग्रसित देखता है। प्रतिभाशाली व्यक्तित्वों को ऐसी प्रतिक्रिया रचनात्मक संघर्ष की ओर उन्मुख करती है। जायसी हिन्दी ही नहीं, अपितु भारत की महानतम् साहित्यिक प्रतिभाओं में एक हैं। प्रतिभा का सामान्यता से संबंध नहीं होता। डॉ. रामप्रसाद मिश्र ने 'प्रतिभा' की अतीव सुन्दर–सटीक परिभाषा करते हुए इसका बेहद गंभीर विश्लेषण किया है– प्रतिभा– संघर्ष की दासी, अभाव की पत्नी, विवशता की प्रेमिका...।[5] पदमावत को अनेक बार शब्द–प्रति शब्द पढ़ने के उपरांत मेरी अति विनम्र राय, बल्कि अनुमान में जायसी कुण्ठाग्रस्त भी थे और यौनत्रस्त भी। लेकिन यह ग्रस्तता– त्रस्तता अत्यन्त ही रचनात्मक थी। इसीलिए 'पदमावत' निजी अभावों के समक्ष आत्मसमर्पण करने से इंकार करती संघर्षशील साहित्यिक क्रिया–प्रतिक्रिया है। यह कृति महान् उपलब्धियों की प्राप्ति के लिए विकट संघर्ष की अनिवार्यता पर ज़ोर देती है। विशिष्ट अथवा महत्त्वपूर्ण होने के लिए अभावजनित बेचैनी, तनाव, पीड़ा को महसूस करना, हो सके तो साक्षात् झेलना आवश्यक है। जायसी का अतीवव्यग्र–उद्विग्न–तड़पीला आत्मसम्मोहन गहरा प्रभाव छोड़ता है–

एक नैन कवि मुहमद गुनी। सोई बिमोहा जेइँ कबि सुनी।।[6]

स्वयं को चन्द्रमा, शुक्र नक्षत्र, सुगंधित रसीले आम्र, अपार–अगाध सागर, आकाश की ऊँचाईयों से होड़ लगाते स्वर्णगिरि सुमेरु, बारहबानी कंचन से तुलनीय सिद्ध करने में महाकवि का आत्मविश्वास–आत्मगौरव झलक रहा है। साथ–ही–साथ उनकी संघर्षशीलता भी मुखर हो रही है। उन्हें जो देखता था, हँस देता था। ज़माने की निर्मम हँसी–उपहास–व्यंग्यों का जवाब जायसी ने ''रस कौंला पूरी'' के रूप में दिया। जब आम व्यक्ति उन्हें शारीरिक कुरुपता के कारण उपेक्षित कर देता था, तब आम स्त्री और सुंदरी रमणी तो उन पर एक बार के बाद दूसरी बार दृष्टि तक नहीं डालती होगी। सौन्दर्य द्वारा प्रेम का वरदान मिलने की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती। उनकी चेतना की मधुर कामनाएँ चिरअतृप्त रह गईं। ऐसे में उनका मानसिक संघर्ष अत्यन्त भीषण रहा होगा। उनकी उत्कण्ठाएँ बेहद तीव्र रही होंगी। उनके समक्ष एक ही विकल्प बचा और उन्होंने 'पदमावत' के रूप में एक समानान्तर लोक की मौलिक कल्पना कर दी। यह रचना अपनी समग्रता में मनोरम है। पदमावती दैहिक सौन्दर्य की शतशः निर्दोष प्रतिमा है। उसके महतोमहीयान् रूप की रचना का श्रेय जायसी की उस शारीरिक कुरूपता को 'भी' जाता है, जिसके कारण उनके निकटस्थ समाजों ने उनकी त्रासदायी उपेक्षा की थी। जायसी ने सिद्ध कर दिया कि उनके समय के भारतवर्ष में उनकी टक्कर लेने वाला सौन्दर्य–बोध किसी के पास नहीं था। इस दृष्टि से अपने समय में वे अतुलनीय थे। इस संदर्भ में एक बेहद अर्थवान् जनश्रुति प्रसिद्ध है। इसके अनुसार उनकी शेरशाह सूरी से भेंट हुई थी। सुल्तान को उनकी कुरूपता पर हँसी आ गई, जिससे एक ऐतिहासिक उत्तरितप्रश्नात्मकउक्ति उत्पन्न हुई। सौन्दर्य के सूक्ष्मतम् रहस्यों के महान् ज्ञाता ने पारमार्थिक सत्ता से सहायता लेते हुए 'सत्य' को समझाने के तेवर में पूछा था– ''मोहि का हँसेसि कि कोहरहि'' (मुझ पर हँस रहा है या मुझे बनाने वाले कुम्हार पर)? जनश्रुति वास्तविकता पर भी आधारित हो सकती है और किसी मेधावी काव्यरसिक की ललित कल्पना पर भी। लेकिन दोनों ही स्थितियों में इससे निःसृत अर्थों एवं तथ्यों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। शेरशाह सूरी राजनीतिक सत्ता पर अधिकार के कारण अपने समय की सर्वाधिक शक्तिशाली इकाई था। वह विशिष्टतम् था। लेकिन उसकी हँसी किसी इकाई की नहीं थी। वह ऐसे समाजों की मानसिकता थी जिसके सदस्य पूरे प्रयत्न करके अपने से नीचे के व्यक्तियों, वर्गों, समूहों, वर्णों आदि को खोजते हैं, बनाते हैं। अपने से नीचे पर सुविधानुसार–अवसरानुसार चोट करना भारतीय समाजों का स्वभाव रहा है। यह उसकी 'सोच' है। जायसी सदृश महाकवि की प्रतिभा जब तक समाजों द्वारा स्वीकृत–सम्मानित नहीं हुई, तब तक जमाना उन पर हँसता ही रहा, उनका मज़ाक उड़ाता रहा। जब उपहास का पात्र, मानेकि निचले पायदान पर बैठा व्यक्ति किसी–किन्हीं कारणों से महत्त्वपूर्ण–आदरणीय बनने में सफल–समर्थ हो जाता है, तब समाजों को निर्लज्ज करवट लेते देर नहीं लगती। उसकी दृष्टि में, सोच में तुरन्त ही बदलाव आता है। वह उस व्यक्ति का गुणगान करने लगता है। समझ में ऐसा परिवर्तन सुचिन्तित अवसरवादी मानसिकता के कारण आता है। शोषण पर आधारित सामाजिक व्यवस्थाएँ अनिवार्यतया यथास्थितिवादी होती हैं। इसीलिए उनका उद्देश्य सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों स्तरों पर अति विशिष्ट बनी इकाई को उसके समूहों से काट कर अपने समाजों में अंतर्भूत करना होता है। सुविधाभोगी समूह निश्चित स्वार्थी सीमाओं तक ही मानवीय होते हैं। उनका मूल स्वभाव मनुष्यत्व के प्रति प्रेम के स्थान पर श्रेष्ठत्व के प्रति श्रद्धा रखने का होता है। किन्हीं भी मानदण्डों के आधार पर श्रेष्ठता–नेष्ठता को मानव के पारस्परिक संबंधों का आधार बनाने वाले परिवर्तनविरोधी समाजों के स्वार्थी चरित्र को जायसी ने गहरे अनुभव किया था। विडंबना यह है कि वे स्वयं पदमावत में ऐसे स्वार्थी समूह के सदस्य की भाँति आचरण करते दृष्टिगोचर होते हैं। कवि औसत मनुष्य के सरोकारों से पूर्ण निरपेक्ष दिखलाई देता है। यह उनका इतिहास–बोध है। इससे आभास मिलता है कि रचनाकार किन ताकतों के साथ है। अस्तु। जनश्रुति के अनुसार शेरशाह सूरी ने जायसी का बहुत आदर–सम्मान किया था।

आखिरकार वह विकट संघर्ष के बाद ही साधारण इकाई से भारतवर्ष का सुल्तान बना था। 'फरीद' से 'शेरशाह' बनने की प्रक्रिया विकट ही रहीहोगी। 'पदमावत' के अनुसार मार्मिक कथा ने श्रोताओं को अश्रुविगलित करके सर्जक की प्रतिभा का लोहा मानने को बाध्य कर दिया। रूपवानों अथवा अति विशिष्ट समूहों ने इस कुरुप लेकिन महान् प्रतिभा से समन्वित महाकवि की महानता स्वीकार की और चरण–वंदना करते हुए मार्गदर्शन की याचना की मानेकि अपने समूहों का सदस्य बना लिया, ''सब रूपवँत पाँव गहि मुख जोबहिं कइ चाउ।।''[7]

स्पष्ट है कि यश की आकांक्षा कथा की मौलिक कल्पना का एक अन्य महत्त्वपूर्ण प्रयोजन है। जायसी ने स्पष्ट तौर पर समसामयिक समाजों अर्थात् वर्तमान समय में आदर पाने की इच्छा व्यक्त की है। कृति की सफलता की उक्त सूचना दे कर ही उन्होंने साफ तौर अपनी कामयाबी के तथ्य को रेखांकित कर दिया है। ग्रन्थ के अंत में उन्होंने बड़ी विनम्रता के साथ अध्येताओं से उन्हें भविष्य में याद रखने का आग्रह किया है। सहृदयों के स्मृति–पटल पर स्थायी स्थान बनाने की उत्कट अभिलाषा कीर्ति की कामना एवं पहचान–स्थापन की दुर्दमनीय आकांक्षा की उद्घोषिका है। यह कामना जीवन के एक अच्छे–खासे भाग तक अपूर्ण रह कर कवि को व्यथित करती रही। सर्जनात्मक प्रतिभा के इस रमणीय विश्रामस्थल जैसा निवेदन अन्य किसी संत भक्त कवि ने नहीं किया। कबीर, सूर, तुलसी को इस बात की कभी कोई चिन्ता नहीं रही कि वे भविष्य में स्मृत किए जाएँगे अथवा नहीं। जायसी को यह चिन्ता है– ''जो यह पढ़ै कहानी हम सँवरै दुई बोल।''[8] पाश्चात्य काव्यशास्त्र में क्रोचे का अभिव्यञ्जनावाद प्रसिद्ध है। यह काव्य–रचना की मूल प्रेरणाओं का विश्लेषण करता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि जीवन मनुष्य का सर्वोपरि वित्त है। मनुष्य हमेशा ही जीवित रहना चाहता है, स्वयं को अभिव्यक्त करना चाहता है, अपनी पहचान बनाना चाहता है। लेकिन वह इस अटल सत्य से भी परिचित है कि वह सदैव ही जीवित नहीं रहेगा। मृत्यु अटल सत्य है। इस सत्य की अनुभूति मनुष्य को विभिन्न रचनाओं के माध्यम से देहांत के अनंतर भी किसी–न–किसी रूप में जीवित रहने को प्रेरित करती है। इसीलिए वह आत्म की अभिव्यक्ति करके उसे विस्तार देता है। स्थापत्य, चित्र, संगीत, वैज्ञानिक खोजों आदि–आदि के माध्यम से समर्थ व्यक्ति मृत्यु के अनंतर भी लोगों की यादों में जीवित रहने का प्रयत्न करते हैं। औसत मनुष्य इसके लिए संतान का सहारा अपनाता है। वह अपनी औलाद के रूप में जीवित रहता है। ''आत्मा वै जायते पुत्रः'' सूत्र इसी मनोवैज्ञानिक सत्य का उद्घाटन करता है। साहित्य भी ललित आत्माभिव्यक्ति है। कीर्ति–कामना के मूल में हमेशा जीवित रहने की मानसिकता है। जायसी पदमावत के माध्यम से संसार में अपनी पहचान को शाश्वत बनाने की अभिलाषा रखते हैं। वे भविष्य के समाजों की स्मृतियों में जीवित रहना चाहते हैं–

> औ मन जानि कबित अस कीन्हा। मकु यह रहै जगत महँ चीन्हा।।[9]

यहाँ एक रोचक पेंच है। महाकवि ने 'मकु' शब्द का प्रयोग किया है। यह सहज अनिश्चितता का द्योतक है। कृति लोकप्रियता हासिल करके कालजयी महत्त्व की अधिकारिणी हो सकती है। साथ ही इस बात की भी कितनी ही क्षीण सही, संभावना अवश्य है कि यह उपेक्षित हो कर गुमनामी के अंधेरों में भी खो सकती है। न जाने कितने रचनाकारों के साथ ऐसा हुआ होगा। जब आज के समय में प्रबंधन–कला में कौशल के अभाव में कितने ही श्रेष्ठ साहित्यकार समुचित महत्त्व नहीं प्राप्त कर पाते, तब मुद्रण तकनीक एवं प्रचार–प्रसार के अभाव के उस युग में किसी भी महान् साहित्यकार के हाशिए में सरकने के अवसर पर्याप्त थे। स्वयं जायसी का उल्लेख तक किसी चर्चित–तथाकथित नामवर इतिहासकार ने नहीं किया है। उनकी कोई शिष्य–परम्परा भी नहीं थी क्योंकि वे किसी संगठन से भी जुड़े नहीं थे। सामान्य चर्चाओं में भी जायसी का महाकवि या संत के रूप में उल्लेख प्राप्त नहीं होता।[10] वे लोकविश्रुत व्यक्ति नहीं थे। स्तुति–खण्ड में ग्रन्थ के एकदम आरंभिक कडवकों में यश–प्राप्ति की कामना निश्चितता के साथ अभिव्यक्त हुई है– समस्त रूपवान् कुरुप जायसी के पाँव पकड़ कर चाव से उनका मुख जोहते हैं।[11] यहाँ विनम्रता का स्थान किञ्चित उद्दण्डता लिए हुए है। प्रोफेसर विजयदेव नारायण साही के अनुसार ''कवि कर्म की परम्परा'' में आने वाले विनीत आग्रह एवं गर्वोक्तियाँ ''कवि होने की जागरूकता''[12] का आभास कराती हैं। लेकिन जानकारी की दृष्टि से दोनों वक्तव्य परस्पर विरोधी हैं। यदि 'उपसंहार खण्ड' की विनय पर विश्वास किया जाए तो 'स्तुतिखण्ड' में किया गया दावा बड़बोली–सूचक गलतबयानी है और यदि इसके विपरीत स्तुतिखण्ड के कथन पर विश्वास करें तो उपसंहार–खण्ड का आग्रह विनम्र प्रार्थना मात्र है। उसके अर्थ का विशेष महत्त्व नहीं है।

ग्रन्थ के अंत में जायसी वेदना–विह्वल दीखते हैं। रूप एवं राग की एक भरी–पूरी दुनियाँ ध्वस्त हो चुकी है। निर्मल भावों के मानवीकरण संसार से विलुप्त हो चुके हैं। कवि उनके विषाद से आच्छन्न है। रचना–प्रक्रिया के दौरान वर्तमान तथा वर्द्धमान रहने वाली ऊर्जा एवं गतिशीलता गायब हो चुकी है। अब तो मात्र कथा रहेगी। कथा को स्मृत रखना अध्येताओं पर निर्भर करता है। महाकवि ने अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया। अब पाठकों पर अपने कर्त्तव्य–पूर्ति का उत्तरदायित्व है। ऐसी पंक्ति के लेखन के समय निश्चित तौर पर यह नहीं कहा जा सकता था कि श्रोता अपने कर्त्तव्य को पूरा करेंगे अथवा नहीं। ये यथार्थ से परिचय के क्षण हैं। कृति के आरंभ में दी गई सूचना प्रामाणिकता की दृष्टि से नितांत अविश्वसनीय है। जायसी ने अभी पदमावत की रचना आरंभ मात्र की थी। उसके जनता तक पहुँचने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। ऐसे में उसकी राय प्राप्त होने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। यह भी माना जा सकता है कि कवि ने मौलिक कथा के प्रारूप की चर्चा कतिपय निकटस्थ मित्रों से की होगी। उनकी टिप्पणियाँ उत्साहवर्धक रही होंगी। उनके प्रशंसापरक उद्गारों के आधार पर सर्जक कलाकार ने पदमावत के अपूर्व प्रभावी होने से संबंधित वक्तव्य दे दिया। यदि ऐसा है, तब भी इसे अननुशासित व्यग्रता ही कहा जाएगा। कुछेक आत्मीयों की राय को 'सब' के निर्णय के रूप में थोपना संतुलनहीनता का संकेतक है। यश–प्राप्ति की इच्छान्वित अनुभूति पर नियंत्रण खोने से कवि की विश्वसनीयता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। यदि जायसी पदमावत की साहित्यिक उच्चता पर टिप्पणी करते, तो वह पूरी तरह उचित होता। किन्तु वे ग्रंथ के प्रभाव के बारे में बतला रहे हैं। प्रश्न उठता है कि उन्होंने अप्रामाणिकता और अविश्वसनीयता का संकट क्यों उठाया? अथवा उन्होंने स्वप्न को सच में ही यथार्थ कैसे मान लिया? मेरे विनम्र अनुमान के अनुसार लक्ष्यों के नितांत वैयक्तिक होने पर ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। स्वयं को दांव में लगा देखने की स्थिति में ऐसे संकट उठाए जाते हैं। रचनाकार स्वयं तो कथा की रूपरेखा से भली–भाँति अवगत था ही। ऐसी अभूतपूर्व मौलिक कल्पना स्वाभाविक रूप से किसी भी आत्मकेन्द्रित रचनाकार को आत्ममुग्ध कर सकती है। ऐसा में अधिक प्रतीक्षा करना असंभव हो जाता है। ऐसी आतुरता के वशीभूत होकर कवि ने संभावना को परिणाम बना

कर स्थापित कर दिया। कथा यदि विराट–व्यापक सामाजिक सरोकारों से जुड़ी होती तो कीर्ति का वैयक्तिक प्रयोजन भी विशद हो कर धृति धारण करने में समर्थ हो पाता। तब अधिक–से–अधिक अनुमान लगाया जाता। लेकिन गाथा गाथा तो महाप्रभुओं की सीमित दुनियाँ की है। इसलिए कवि की वैयक्तिकता भी संकरी है। उसे शीघ्रातिशीघ्र अपने पक्ष में परिणाम चाहिए था। इससे महाकवि के मनोविज्ञान की जानकारी मिलती है। उनमें असुरक्षा–बोध है। कबीर, सूर, तुलसी वाली निश्चिन्तता जायसी में देखने को नहीं मिलती। भवभूति सदृश महाकवि ने अपने रचना–सामर्थ्य एवं कबीर सदृश संत ने अपने ज्ञान एवं आध्यात्मिक आनंद की सिद्धि से संबंधित गर्वोक्तियाँ की हैं। ये अपनी आत्मा में स्वयं उन तक ही सीमित हैं। ये कवि अनिश्चित सामाजिक प्रतिक्रियाओं को भविष्य पर छोड़ देते हैं। उन्हें निश्चितता के साथ व्यक्त करने की अधीरता नहीं दिखलाते। जायसी तुरंत परिणाम चाहते हैं, वह भी पक्ष में। नतीजा विपरीत होने पर वे ह्रदयविदारक विलाप करने लगते हैं। इसीलिए उनका रूप और राग संपूर्णता में केवलमात्र यौवन अर्थात् शरीर अर्थात् भोग पर आश्रित है। उसमें सर्वत्र स्खलनसंकेतक अतीव आकर्षक तीव्रता तो है, लेकिन तनावों को रचनात्मक रूप में धारण करने की क्षमता का अभाव है। यही कारण है कि पदमावत की कथा या तो अनियन्त्रित सुख को स्वरबद्ध करती है या अनियन्त्रिक दुःख को या समाप्ति–मृत्यु–प्रलय को। जो सामान्य जीवन सुख और दुःख अथवा उद्भव एवं समाप्ति के बीच गतिशील होता है, उसकी समीक्षा करने में जायसी की कोई विशेष रुचि नहीं है। इसीलिए उनमें ज़ल्दबाजी की प्रवृत्ति बहुत अधिक है। स्तुति–खण्ड के यश–प्राप्ति संबंधी वक्तव्य में दर्शित होने वाली शीघ्रता उनके प्रेम एवं सौन्दर्य संबंधी विश्लेषणों में भी ज्यों–की–त्यों व्याप्त है। यह उनका स्वभाव है, जिसका सीधा संबंध प्रबंधकाव्य के सरोकारों से है।

संदर्भ

1. पदमावत, 23/4 4 से 7, 1/23
2. वही, 24/5 से 7, 1/24
3. वही, 652/1
4. वही, 652/2
5. बौद्धिक रस, 'प्रतिभा' शीर्षक कविता, रामप्रसाद मिश्र
6. पदमावत, 21/ 1 से 7
7. वही, 21/1/21
8. वही, 652/58/1
9. वही, 652/3
10. ''सूर सूर तुलसी ससी'' सदृश स्थापनाएँ
11. पदमावत, 21/9
12. जायसी, विजयदेव नारायण साही